वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

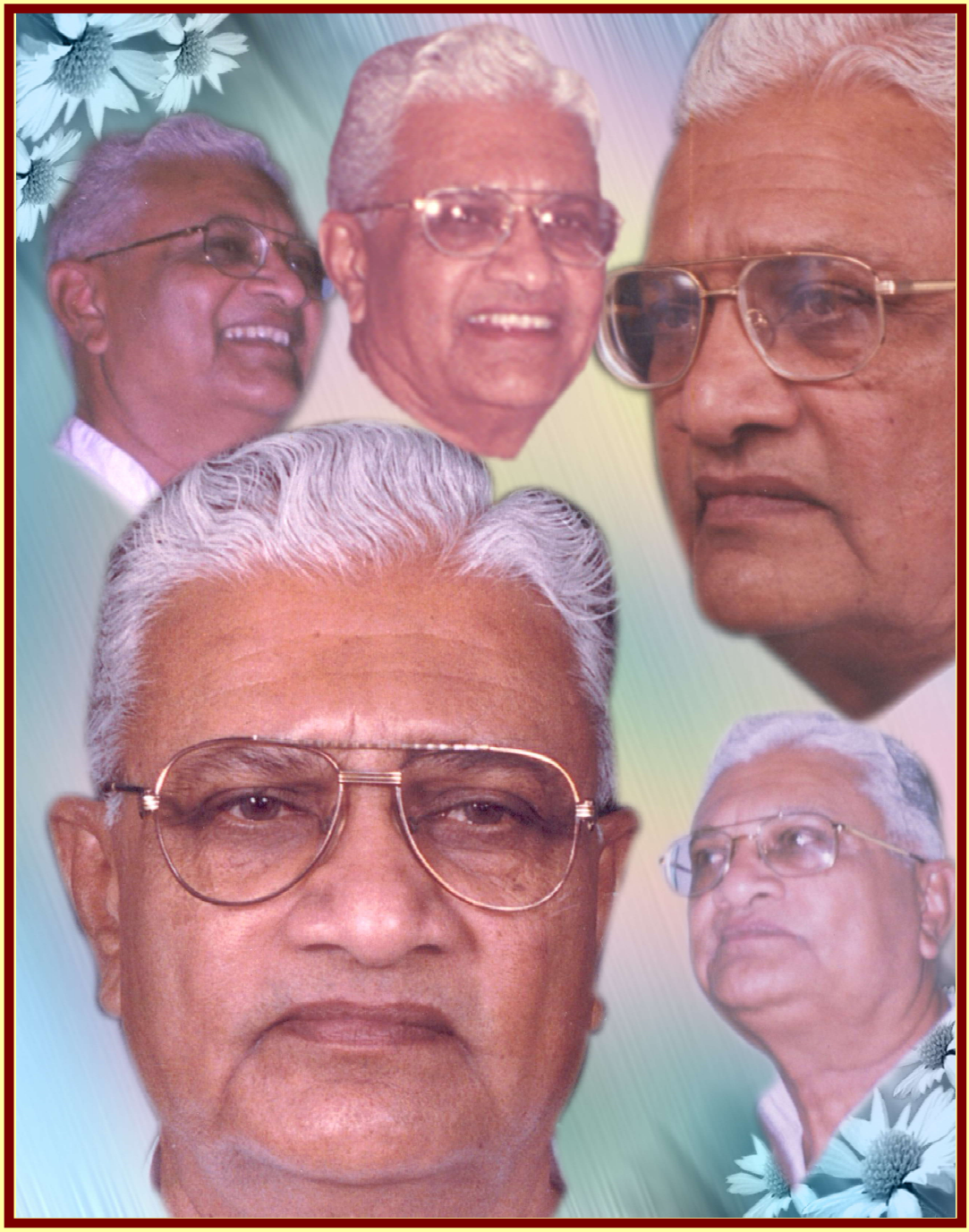

सर्व ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंका समन्वय करके उनके ज्ञानीपनेको समजानेवाले,
वर्तमान समाजको अति उपकारी ऐसे स्वानुभवविभूषित पूज्य भाईश्री
शशीभाईको उनके ९१वें जन्मजयंतिके (मार्गशीर्ष सुदि अष्टमी) अवसर पर
उनके चरणोंमें स्वानुभूतिप्रकाश परिवारके भक्तिपूर्ण शत-शत वंदन

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०: अंक-३१२, वर्ष-२५, दिसम्बर-२०२३

निज परमपावन परमात्मा का निज परमस्वरूप, उसके प्रवाह (अस्तित्व) की परम प्रतीति और उसमें स्थिरता-यह ऐसा अमूल्य चिंतामणि रत्न है कि जिसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। १३.

*

मृतक कलेवर में मूर्छित - ऐसा अमृत आनंद स्वरूप आत्मा निज की ओर नजर भी नहीं करता। अपनी ओर दृष्टि करते ही सुख-रूप अमृत से भरे हुए पूर्ण समुद्र को निरखते, देखते, अवलोकन करते, दृष्टिगत करते, मानते और उसमें स्थिर होते ही तृप्ति होती है - वस्तु स्वयं ऐसी ही है। १७.

*

पूज्य गुरुदेवश्रीके 'परमागमसार'में से कुछएक चयन किये हुए वचनामृत

निश्चय दृष्टि से प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है। जिनवर और जीव में अंतर नहीं - चाहे वह एकेन्द्रिय का जीव हो अथवा स्वर्ग का जीव हो, यह सब तो पर्याय में है, वस्तुस्वरूप से तो परमात्मा ही है। जिनकी दृष्टि पर्याय से हट कर स्वरूप पर गई है वे तो स्वयं को भी परमात्मस्वरूप (ही) देखते हैं, और प्रत्येक जीव को भी परमात्मस्वरूप ही देखते हैं। सम्यक्दृष्टि सब जीवों को जिनवर (रूप से) जानते हैं और जिनवर को जीवस्वरूप से जानते हैं। अहा ! कितनी विशाल दृष्टि! अरे, यह बात स्वीकार हो तो कल्याण हो जाय परंतु ऐसी श्रद्धा की अवरोधक मान्यतारूपी गढ़ का पार नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंग का सार तो यह है कि जिनवर समान आत्मा को दृष्टि में लो, क्योंकि आत्मा का स्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। २५.

*

प्रश्न :- आत्म सन्मुख होने की विधि क्या है ?

उत्तर :- जो पर ओर देखता है वह स्व ओर देखे तो स्वसन्मुख होता है। अनंत-अनंत ज्ञानानंद सामर्थवाली वस्तु, उसका जैसा और जितना महात्म्य है वैसा और उतना महात्म्य उसके ज्ञान में आवे तो वह ज्ञान स्वसन्मुख हो सके। ३२.

*

चैतन्य चमत्कारी तत्त्व की सामर्थ्य कितनी ! ऐसा अंतर में देखे - प्रतीति करे तो धर्मरूपी महल के

निर्माण का आधार स्तंभ खड़ा होता है। विकल्पों के टूटे बिना ऐसे वस्तु स्वरूप का अंतर में स्वीकार नहीं होता। वस्तु है - वह सीमा रहित है। वस्तु अमर्यादित है, अक्षय और अमेय है। ऐसी वस्तु को श्रद्धा में लेनेवाली पर्याय का भी कभी नाश नहीं होता - वह ऐसी अक्षय और अमेय है। भले ही अचारित्र के परिणाम हो तो भी इसकी श्रद्धा पर्याय की, ज्ञान पर्याय की इतनी शक्ति है कि 'राग मुझ में नहीं, परद्रव्य मुझ में नहीं' - ऐसा जान लेती है। ६२.

*

ज्ञान में चैतन्यस्वभाव की महत्ता भासित हुए बिना ज्ञान अंतर में नहीं ढल सकता। ज्ञान में चैतन्यस्वभाव की महिमा व महत्ता भासित हो तब ही ज्ञान अंतर में ढलता है। ६९.

*

अनंत प्रतिकूल द्रव्य आ पड़े तो भी आत्मा हिलाये न हिले। तीव्र से तीव्र अप्रशस्त अशुभ परिणाम हो, उनसे भी ध्रुव आत्मा हिलाये न हिले, और एक समय की पर्याय से भी आत्मा हिलाये न हिले - ऐसा अगाध सामर्थ्यवान ध्रुव आत्मा है, उसे लक्ष्य में लेने से भव-भ्रमण छूटे - ऐसा है। ९७.

*

मुझे बाहर का कुछ चाहिए - ऐसा मानने वाला भिखारी है। मुझे मेरा आत्मा ही चाहिए - ऐसा मानने वाला बादशाह है। आत्मा अचिंत्य-शक्तियों का स्वामी है, जिस क्षण जगे उस क्षण ही वह जाग्रत-ज्योति-आनंद स्वरूप अनुभवगम्य हो जाता है। ९८.

*

गाय-भेंस आदि पशुओं के कण्डे मिलते ही गरीब स्त्रियाँ बहुत खुश हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर सेठ लोग बाग़-बाग़ हो जाते हैं। परंतु कण्डे और धनादि में कोई अंतर नहीं। एक बार आत्मा के वैभव का दर्शन करे, तो बाह्य वैभवों की निर्मूल्यता भासित हो जाए। १००.

*

देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि भाई तुझे तेरी महिमा भासित हो तो उसमें, हमारी महिमा तो हो ही जाती है। तुझे तेरी महिमा तो भासित होती नहीं, तो तुझे हमारी भी यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई - तूने हमें पहचाना ही नहीं। १०१.

*

अरे भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढय नहीं। तुम्हारे अंतर में परमात्मा विराजते हैं, इससे अधिक धनाढयपन अन्य क्या हो सकता है ? ऐसे अपने परमात्मस्वरूप की बात सुनते ही तुझे अंतर से उल्लास उछलना चाहिए, इसकी लगन लगनी चाहिए, इसके पीछे पागल हो जाना चाहिए - ऐसे परमात्मस्वरूप की धुन लगनी चाहिए। सच्ची धुन लगे तो, जो अंतर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ? अवश्य ही प्रगट हो। १२९.

*

तीनलोक के नाथस्वरूप यह आत्मवस्तु अभेद है। उसका लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन होता है। गुण-गुणी के भेद में लक्ष्य रहने से विकल्प उठेंगे, राग होगा, बंधन होगा, इसलिए गुण-गुणी के भेद को ऐसा अलोप कर दे कि मानो जानता ही नहीं और जहाँ नित्यानंद प्रभु है वहाँ दृष्टि दे, भाई ! द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दर्शन है। परंतु द्रव्य तथा उसके गुणों की दृष्टि सम्यग्दर्शन है - ऐसा नहीं कहा है। १३५.

*

''आत्मा ज्ञानमात्र है'' ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि, आत्मा शरीररूप नहीं, वाणीरूप नहीं, पुण्यपापरूप नहीं और एक समय की पर्याय मात्र भी नहीं है। ''आत्मा ज्ञानमात्र है'' यह कहने का अर्थ है कि आत्मा ज्ञान-दर्शन, अकार्य-कारण, भावादि अनंत शक्तिमय है। प्रभु ! तेरे घर की क्या बात है ! तेरे में अनंत शक्तियाँ भरी हुयी हैं और एक-एक शक्ति

अनंत सामर्थ्यवान है, प्रत्येक शक्ति अनंतगुणों में व्याप्त है, प्रत्येक शक्ति में अन्य अनंत शक्ति का रूप है, प्रत्येक शक्ति अन्य अनंत शक्तियों में निमित्त है। ऐसी प्रत्येक शक्ति में अनंत पर्यायें हैं, वे पर्यायें क्रम से परिणमित होने से क्रमवर्ती हैं, तथा अनंत शक्तियाँ एक साथ रहने के कारण वे अक्रमवर्ती हैं। ऐसे अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती गुण-पर्यायों का पिण्ड - वह आत्मद्रव्य है। द्रव्य शुद्ध है, गुण भी शुद्ध है तथा उन पर दृष्टि करने से परिणमन भी शुद्ध ही होता है। १६९.

*

एक-एक गुण का परिणमन स्वतंत्र और अलग नहीं होता, परंतु अनंत-गुणमय द्रव्य के परिणमित होने पर गुणों का साथ-साथ परिणमन होता है। एक-एक गुण पर दृष्टि डालने से गुण का शुद्ध परिणमन नहीं होता, परंतु द्रव्य पर दृष्टि देने से अनंत गुणों का निर्मल परिणमन होता है, - आशय यह है कि गुण भेद पर से दृष्टि हटाकर अनंत गुणमय द्रव्य को दृष्टिगत करते ही द्रव्य शुद्धरूप से परिणमित होता है। १८३.

*

आत्मा की विकल्प सहित साधारण महिमा को महिमा नहीं कहते। अंतर में रुचे तो वीर्य उछले, वह यहाँ-कहाँ उछलता है ? साधारण धारणा और महत्ता तो अनंत बार हुई, परंतु यथार्थ आत्ममहिमा तो अंतर-स्फुरित होनी चाहिए, एक यही कमी रह गयी है। प्रथम माहात्म्य होता है और पीछे माहात्म्य की उग्रता होते-होते एकाग्रता होती है। १९३.

*

अहो ! जिसके आनंद के एक क्षण के (रसास्वाद) के आगे तीन लोक का सुख विष सम लगे - जहर जैसा लगे - तिनके समान तुच्छ लगे - भगवान आत्मा तो ऐसा है। १९९.

*

मेरे चैतन्य उपयोग का हनन होता ही नहीं, जिसका हनन हो उसे उपयोग ही नहीं कहते। पर प्रभु! केवलज्ञान नहीं है न ! केवलज्ञान का प्रयोजन ही क्या है ? जिसके हाथ में केवलज्ञान की खान आ गयी है उसे केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। २००.

*

भगवान आत्मा ज्ञान की मौजों में उछलता हुआ, पर के काम और राग के काम मेरे नहीं - ऐसी दृष्टि करता हुआ केवलज्ञान के किनारे आ खड़ा हुआ है। २०२.

*

राग होने पर भी साधक के हृदय में सिद्ध भगवान टंकोत्कीर्ण रहते हैं। २०३.

*

जिन्होंने स्वयं के पर्याय अंश से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि की वे अन्य द्रव्य को भी इसी प्रकार देखते हैं अर्थात् अन्य पदार्थों को भी उनकी पर्याय से नहीं देखते, बल्कि उन्हें द्रव्यरूप से ही - वस्तुरूप से ही अखंड देखते हैं। २०९.

*

द्रव्य में जितनी सामर्थ्य निहित है, उतनी ही सामर्थ्य जबतक दृष्टि में न आये तबतक निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। २१९.

*

'सर्वज्ञ-सर्वदर्शी' - ये शब्द जब सामने आते हैं, तब आहाहा ! अखंड वस्तु जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है - वह पूरी की पूरी नजरों में तैरने लगती है। २२२.

*

आत्मा आनंदस्वरूप है। इसके भान बिना व्रत, जप और तप - ये सभी ही बिन दूल्हे बारात जैसे हैं। २२७.

*

'आत्म-रुचि' पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का सुंदर लेख

जीव के परिणमन में जैसे ज्ञान की प्रधानता है, वैसे ही रुचि के परिणाम भी खास प्रकार का महत्त्व रखते हैं। परमार्थमार्ग में उस विषय को समझना महत्त्व पूर्ण होने से इस विषय में यत्किंचित विचारणा करने योग्य है, जिससे विराधक परिणामों से होता हुआ अहित न होवे और निजहित को साध सकें।

(भाव) दर्शनमोह का अनुभाग घटने से उत्पन्न जो आत्मा के निर्दोषता-पवित्रता प्रत्ययी सुहाते परिणाम को 'रुचि' कहने योग्य है; जो विकसित हो करके निर्दोष परिपूर्ण पवित्र आत्म-स्वभाव को ही विषय करती है या अनन्य भाव से चाहती है। इस तरह सूलटी रुचि से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और इस विषय के सिवा अगर राग की, दोष की, पुण्य की, कषाय की, अनेक प्रकार के संसार के भावों की रुचि हो तो उससे मिथ्यात्व दृढ़ होता है। मुमुक्षुजीव की विधि-विषयक भूल नहीं रहे, यह इस विचारणा का खास हेतु है।

स्वभाव की 'यथार्थ रुचि' स्वभाव के भाव - भासनसे उत्पन्न होती है, और इसलिये स्वभाव का अनन्यभाव से भाना होता है। ऐसे रुचिवंत जीव को उदय के अनेक कार्यों के प्रसंग पूर्वकर्म अनुसार रहते हैं, उसवक्त उदय की प्रवृत्ति खटकती है और बोझारूप लगती है; ऐसे समय में अनेक कार्य करने पर भी जागृति और सावधानी उपरांत लक्ष्य, आत्मस्वभाव का ही रहा करता है, अर्थात् बाह्य प्रवृत्ति उपयोगरहित चक्षु के जैसी चलती है।

जैसे पतंगा दीपक की रुचिवशात् झपटकर दीपक में गिरता है, वैसे आत्मरुचि पुरुषार्थ के वेग को उत्पन्न करनेवाली होने से शिथिलता व प्रमाद को दूर करके, स्वभाव प्रति ज़ोर करके उछलती है। रुचि में स्वभाव के सिवा दूसरा पोसाता नहीं। स्वविषय की प्राप्ति के बिना चले नहीं - ऐसी ही स्थिति यथार्थ रुचि में होती है;

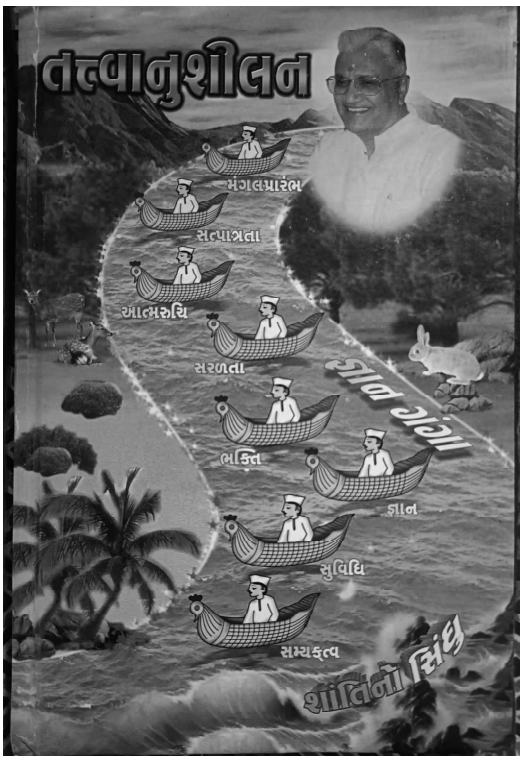

जहाँ दूसरा पोसाता है वहाँ रुचि (स्वविषयक) नहीं है, ऐसा समझने योग्य है। रुचिवान को आत्मकल्याण दूर नहीं है।

आत्म-रुचि स्वयं धर्म की पात्रता है। रुचिसहित के परिणाम सहज ही, वैराग्य और उपशम से सराबोर होते हैं। परन्तु यथार्थ रुचि बिना के शुभभाव भी लूखे और चंचलतावाले होते हैं।

आत्मरुचि बिना भेदज्ञान भी नहीं हो सकता। परलक्षी क्षयोपशमज्ञान में 'भेदज्ञान संवर का कारण होने से करने योग्य है'-ऐसा समझने पर भी, रुचि के अभाव में भेदज्ञान नहीं होता। परन्तु आत्मरुचिवंत जीव सहज भेदज्ञान (राग की अरुचि होने से) करता है।

पुनः स्वरूपसाधना करने के इच्छुक कोई जीव बहिर्मुख प्रवर्तते उपयोग को पलटाकर अंतर्मुख करना चाहते हैं, लेकिन अनादि से पर और राग की रुचि को पलटाये बिना उपयोग पलटकर अंतर्मुख होता नहीं।- यह मार्ग की विधि का क्रम है, अथवा यथार्थ कार्यपद्धति

है। अविधि से कार्य नहीं हो सकता; फिर भी करने का उद्यम करें तो मिथ्यात्व दृढ़ होता है। तात्पर्य यह है कि अंतर की रुचि बिना अंतर में जाया नहीं जाता।

आत्मरुचि के सद्भाव में स्वरूप प्राप्त करना सहज-सुगम लगता है। रुचि बिना 'वह' कठिन लगता है। अनुभवप्रकाश ग्रंथमें पूज्य श्री दीपचंदजी कासलीवाल ऐसा कहते हैं-'इस काल में स्वरूप का अनुभव कठिन है, ऐसा माननेवाला स्वरूप की चाह मिटानेवाला बहिरात्मा है।' उक्त वचनामृत के आलोक में मुमुक्षु जीव को खुद को रुचि संबंधित परिणाम की जाँच करने योग्य है।

स्वरूप की अरुचि के कारण - जीव मोक्षमार्ग को कठिन समझकर दूसरा सरल मार्ग अपनाता है, और उसी कारण उन्मार्ग में चला जाता है; ऐसे जीव को अध्यात्म-विषय का निषेध वर्तता है।

स्वरूप की अरुचि के कारण अन्य प्रवृत्ति संबंधित कुतूहल और राग रहा करता है और अंतर्मुखता का पुरुषार्थ... 'बाद में करुंगा' ऐसे परिणाम रहते हैं।

आत्मकल्याण की इच्छा अनंतकाल में अनंतबार होने पर भी और तद्अनुसार बाह्य क्रिया करने पर भी स्वरूप की यथार्थ रुचि के अभाव के कारण ही उसमें सफलता नहीं मिली है। इसे ध्यान में लेने योग्य है।

स्वरूप-रुचि के कारण स्वरूप का बेहद आकर्षण रहता है; इसलिये बाकी सब सहजरूप से विस्मृत हो जाता है। अरे ! रुचि तो स्वयं अपने को भी भूलकरके प्रवर्तती है; और रुचि के विषय में कितना समय चला जाता है उसका भी ख्याल नहीं रहेता।

जिसको जैसी रुचि होती है, वह वैसी ही रुचिवाले का संग करता है। जिससे खुद की रुचि को पुष्टि मिले। और ऐसे ही निमित्तों की कृत-कारित-अनुमोदना करता है। अगर उसमें कोई बाधक बने तो उसके प्रति उसको द्वेष होता है। इस कारण से व्यक्ति की योग्यता-रुचि का नाप उसकी संगत पर से निकलता है।

मृत्यु के समय भी जिसकी रुचि होती है उस विषय की मुख्यतावाले परिणाम सहज ही उत्पन्न हो जाते हैं।

ऐसे दुषमकाल में अध्यात्म की ऐसी सूक्ष्म बात रुचे, यह विशेषता है; उसे ज्यादा भव नहीं होते।

मिथ्यात्व तीव्र होने से जीव को दोष की रुचि होती है, तब वह खुद के दोष का बचाव / रक्षा करता है, और जिसका पक्ष होता है उसके दोषका भी बचाव/ रक्षा करता है, फलस्वरूप सदाविचारबल का नाश होता है। जबकि दर्शनमोह का अनुभाग घटनेसे अथवा मिथ्यात्वरस घटने से जीव को गुण की / स्वभाव की रुचि उत्पन्न होती है, वह जीव सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। रुचि बाधक कारणों को फटाफट हटाकर के, खुद के विषय को ग्रहण करती है।

अनादि से (पर्याय का वेदन होने से) जीव पर्याय जितना ही खुद को अवधारण करके पर्यायबुद्धि होता हुआ, पर्यायमात्र में रुचि के कारण मूर्छित होता हुआ पर्यायमूढ़ हुआ है; इसलिये उसको निश्चयस्वरूप की अरुचि वर्तती है। पर्याय की रुचि के कारण राग और पर की रुचि सहज होती है, जो सर्व प्रकार के दोष और दोष की परंपरा के सर्जन का मूल कारण है।

यथार्थ रुचि के सद्भाव में जीव के अन्य परिणाम भी तद अनुसार आत्मरसवाले होते हैं। साथ ही साथ ज्ञान में स्वभाव की मुख्यता-निश्चय का पक्ष अभेदभाव साधने का कारणभूत होता है। और सहजरूप से स्वरूप का चिंतन, मनन, भावना और लगनीवाला घोलन इत्यादि परिणाम उल्लसित भाव से और धगश से निरंतर चलते रहते हैं-जैसे कि रुचि सर्वगुणों के परिणामों को स्वभाव की और खींच के लाती न हो !

अंत में यह रुचि सम्यक्श्रद्धा की पूर्वभमिका में कार्य करता हुआ परिणमन है। सम्यक्श्रद्धा स्वभाव - सत्ता को तादात्म भाव से ग्रहण करती है, जिसका प्रयास रुचि के काल में (prestage of getting self existence) स्वसत्ता को ग्रहण करने की वृत्तिरूप वर्तती दशा के रूप में होती है।

*

'आत्म-रुचि' विषयक पूज्य भाईश्री के कुछएक वचनामृत

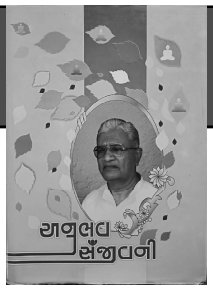

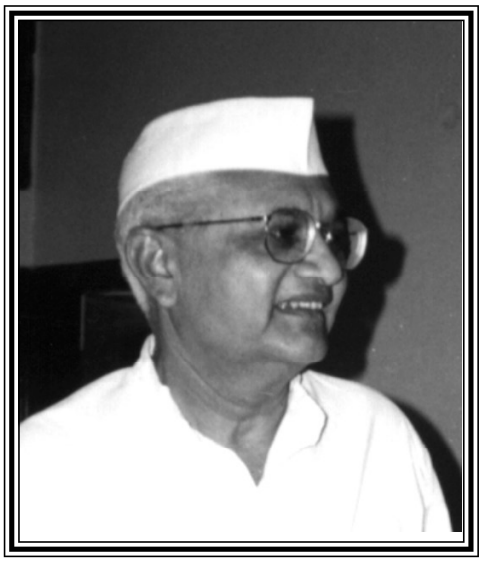

मुमुक्षुकी भूमिकामें कुछएक गुणका होना आवश्यक है; जिसमें आत्मरुचिकी प्रधानता है। जिसके कारण सरलता, प्रयोजनकी पकड़, यथार्थ उदासीनता इत्यादि गुण उत्पन्न होते हैं। आत्मरुचिके बिना क्षयोपशमज्ञान कार्यकारी नहीं होता, क्योंकि प्रयोजनभूत बात पर लक्ष नहीं जाता; पारमार्थिक सरलता उत्पन्न नहीं हो पाती। देव, गुरुके प्रति अर्पणता, आत्मार्थीता आदिके मूलमें आत्मरुचिका होना ज़रुरी है। आत्मरुचि ही जीवको संसारसे यथार्थ उदासीनतामें रखती है; और अंतर जिज्ञासापूर्वक अंतर खोजको उत्पन्न करती है। दर्शनमोहको मंद करनेवाला यह मुख्य गुण है। स्वरूपके भावभासनपूर्वक उत्पन्न हुई अनन्य रुचि सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला मुख्य गुण है। जिससे अपने अंदरमें देखना मुमक्षुजीवके लिए ज़रूरी है। (१७४०)

जिज्ञासा :- कृपालुदेव (श्रीमद्जी) ऐसा लिखते हैं कि, 'एकबार भी यदि जीव सत्पुरुषकी पहचान कर ले, तो वह निर्वाणपदका अधिकारी बनता है।' तो इसमें रहस्य क्या है ?

समाधान :- दृढ़ मुमुक्षुता प्राप्त होने पर, जीवको अंतरात्मवृत्ति उत्पन्न होती है। अंतरात्मवृत्ति अर्थात् आत्मकल्याणकी अंतरसे उत्पन्न हुई भावना - सच्ची आत्मभावना। ऐसी भावनामें आया जीव जब प्रत्यक्षयोगमें सत् श्रवण करता हो तब, आत्मरससे सराबोर हुए ज्ञानीके आत्मभावके निमित्तसे, उस जीवको अपूर्व आत्मरुचि प्रगट होती है। अत्यंतरूपसे स्वभाव रुचनेसे, स्वभावरुचिके कारणसे जीवको स्वभावके संस्कार डल जाते हैं, जिस संस्कारके बलसे सर्वत्र सत्की प्राप्ति होती है। एकबार स्वभावके संस्कार पड़े, उसको नियमसे सम्यक्दर्शनकी प्राप्ति होती ही है। संस्कार कभी निष्फल नहीं जाते। आखिरमें वह जीव निर्वाणपदको प्राप्त करता है। इसीलिए सत्पुरुषकी पहचानको प्रथम समकित (उस भूमिकाका) कहा है। स्वभाव आत्माका शाश्वत स्वरूप है, और ऐसे नित्य आत्मभावके संस्कार अनित्य नहीं होते, क्योंकि वह पूर्ण स्वभाव प्रगट होनेका बीज है, उस बीजमेंसे वृक्ष होगा ही। (१७७०)

*

ज्ञानीपुरुषकी अनुभव-वाणी है। मुमुक्षुजीवको, ज्यों-ज्यों अनुभव पद्धतिसे-प्रयोग पद्धतिसे परिणमन आता है, त्यों-त्यों उस वाणीका परिणमन होता है। अर्थात् वह वाणी आत्मा पर असर करती है। प्रत्यक्षयोगमें इस वाणीका अति चमत्कारिक फल होता है, जीवकी योग्यता ही बदल जाती है। आत्मार्थी जीवकी आत्म-रुचिको पुष्टि मिलनेका इस वाणीमें अनुपम कारण होता है। 'तू रुचता जगतनी रुचि आळसे सौ'। (१७८१)

*

जिज्ञासा :- परिणाममें रसकी उत्पत्ति होनेका विज्ञान क्या है ? परमार्थकी अपेक्षा रस कैसा होता है ?

समाधान :- रस विभाव परिणाममें भी होता है और स्वभाव परिणाममें भी होता है। परिणमनमें विभाव शुभाशुभ भावके साथ तीव्र और मंद ऐसे दो प्रकारसे परिणमन करता है, जो कि कर्मके अनुभाग बंधका निमित्त है। - यह अनात्मरस है, जो कि तत्त्वदृष्टिसे बंध तत्त्व है। रसका विज्ञान समझने जैसा है। ज्ञान जो भी ज्ञेयमें लीन-एकाग्र हो, वह यहाँ तक कि :- अन्य इच्छा उत्पन्न नहीं हो, - उसे रसभाव समझने योग्य है। वह ज्ञानपूर्वक लीनता है। जीवको जिसमें रस होता है उसकी मुख्यता होती है, उसकी रुचि होती है, उसका वजन होता है। जिसको खुदके परिणामका अवलोकन चलता है उसे रस पकड़में आता है - प्रायः अभिप्रायपूर्वक होते भावोंमें रस उत्पन्न होता है और वही उस परिणामकी शक्ति है। आत्मरसमें आत्मशक्ति प्रगट होती है। अतः आत्मरसके कारण आत्मामें एकाग्रता होकर जीव मुक्त होता है। (१८६०)

*

देहादि परद्रव्य और रागादि परभावोंकी भिन्नता तत्त्वज्ञानके अभ्याससे जीवको जानने मिलती है। यथार्थ पारमार्थिक दृष्टिकोणके अभावमें जीवको यदि परके प्रति रस चालू रहे, तो परमें उदासीनता नहीं आती और परका एकत्व नहीं मिटता। यदि 'निजरस' से भिन्नताको जाने तो, सहज उदासीनताको प्राप्त होकर, आत्मरस वृद्धिगत होकर स्वरूपमें एकत्व हो सकता है। अत: हित सधना या नहीं सधना इसका आधार ज्ञानके अलावा रस पर भी आधारित है। तत्त्वके अभ्यासी जीवको यह समझना प्रयोजनभूत है। (१८७१)

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (दिसम्बर-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पण राशि
स्व. भारतीबहिन विजयभाई शेठ, भावनगर एवं
श्रीमती नंदिनीबहिन प्रशांतभाई जैन, भावनगर
की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हस्तलिखित डायरीओंका संकलन-'अनुभव संजीवनी'में से चयन किये हुए कुछएक वचनामृत

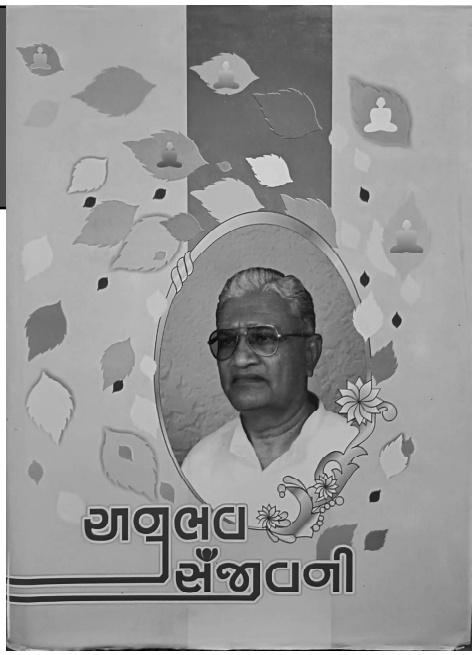

ॐ

भेदज्ञानकी विधि :- पूर्वकर्मके अनुसार शुभा-शुभभाव व क्रमशः वैसे उदयप्रसंग है। उन सभीसे मैं ज्ञानमयरूप होनेके कारण भिन्न हूँ - इसप्रकारसे समभावसे ''स्वका वेदन ज्ञानरूपसे करना ।'' क्षण-क्षणमें, प्रसंग-प्रसंग पर इस प्रकारका अभ्यास करने योग्य है। ज्ञानसे / स्वसे रागकी भिन्नत्ताका अनुभव होनेमें, ज्ञानसे ज्ञानका (स्वका) एकत्व होना वह मुख्य बात है । ज्ञानमें स्व - अस्तित्वका ग्रहण - वेदन होनेसे सहजरूपसे चिद्रस उत्पन्न होता है। यह चिद्रस परिणतिमें जाकर मिलता है । जहाँ ज्ञानगुण है वहाँ अनंतगुण हैं। जहाँ-जहाँ ज्ञानगुणकी पर्याय है वहाँ-वहाँ अनंतगुणकी पर्याय है । ज्ञानक्रियाके आधारसे ज्ञान रहा है। वहाँ 'मात्रज्ञानमें' 'मैं पनेके वेदनमें' विभावका अभाव लक्षगत होता है । उक्त प्रकारसे रागादिसे ज्ञानकी - अपनी भिन्नताका अनुभव करनेका प्रयास / अभ्यास बारबार कर्त्तव्य है। (११)

*

अहो ! सारा जगत, भले ही विविधता सभर तो है फिर भी, अपने आपसे शून्य (खाली) ही देखनेमें आता हैं; फिर उसमें आकर्षण क्यों? उसका आश्चर्य किस लिये ? कुतूहल किस लिये ? अंतरमें महा आनंद सभर निज चैतन्य रत्न चमकता है; उसमें अंतर्मुख - केवल अंतर्मुख रहने योग्य है - स्थिर होने योग्य है । (६७)

*

देह है, वह आत्मा नहीं है और आत्मा है वह देह नहीं है। देहको देखनेवाला - जाननेवाला आत्मा देहसे प्रगट भिन्न है। इस भिन्न देहमें मूर्च्छा होनेके कारण प्रायः जीव उसकी चिंतनामें, आकुलता भोगता हुआ, जीवन गवाँता है।

मुमुक्षुजीवको देहकी चिंतामें जीवन खर्च करना बिलकुल योग्य नहीं है। सिर्फ स्वरूपका अज्ञान है उसीकी चिंता और भय होना चाहिए; ये महान आत्मा देहकी चिंता करनेके योग्य नहीं है। देहकी वृद्धि-क्षय आदि परिणाम देखकर हर्ष-शोक करना उचित नहीं है। (अरे!) मृत्यु समीप दिखे तब भी ज्ञानके कारण जिन्हें देह सम्बन्धित मूर्च्छा नहीं वर्तती है - उन्हें नमस्कार हो!! (५९७)

*

अनन्तकालसे जीवने खुदका कल्याण नहीं किया है, इसका कारण यह कि जीवको सच्ची मुमुक्षुता ही नहीं आयी और असत्संगकी उपासना चल रही है; अथवा वासना है; असत्संगमें रहना जो सुहाता है, वह असत्संगकी वासना

है; वह जीवको अनादि भ्रांतिका मूल कारण है, और स्वच्छंद जैसे महा भयंकर रोगका उत्पादक है, आत्माके प्रति एवं सत्पुरुषके प्रति अरुचि होनेका कारण भी वही है। तीनों कालमें दुर्लभ ऐसे सत्पुरुषके योगमें बड़ा अंतराय होकर जीवको प्रतिबंध होनेके कारणके मूलमें भी असत्संगकी वासना ही रही है। लोकसंज्ञा, ओघसंज्ञा, एवं 'कल्पित ज्ञान' होनेका मूल असत्संगमें रहा है। अतः आत्मार्थी जीवको इस जगह बहुत-बहुत विचार और विवेक करने योग्य है। इस असत्संगसे छूटनेके लिए ज्ञानीकी आज्ञाका अत्यंत अंगीकार होना वह उपाय है। (५९९)

*

अध्यात्मका विषय परम गंभीर है, उसका अगंभीरतासे कथन करना अथवा श्रवणकालमें अगंभीरतासे सुनना यह जीवका बड़ा दोष है, उसमें गुप्त अनादर / उपेक्षा (स्वच्छंद) हो जाता है, ऐसा जानते हैं। अतः हे जीव ! स्वाध्यायके वक्त गंभीर उपयोग रख।

संसारमें एक मरण-प्रसंगमें भी तद्योग्य गंभीरता रखी जाती है, तो यह अनन्त मरणके निवारण प्रसंगकी विचारणाके विषयमें अगंभीर परिणामसे प्रवर्तन करना, यह बालबुद्धि नहीं है क्या ? ओघसंज्ञा और लोकसंज्ञासे यह दोष सहजाकाररूप होता है।

परम गंभीर अध्यात्मतत्त्वके प्रतिपादक श्रीगुरुकी गंभीर गुरू-गिराके प्रति अगंभीर वर्तना-उसे स्वच्छंदका प्रकार समझने योग्य है। वह शास्त्र और गुरुका अविनय है। दर्शनमोहके आवरणका कारण है। (१०२९)

*

आत्मार्थीजीवको स्व-दोष देखकर सहज खेद होता है। उसमें विभावरस मंद होता है। फिर भी कोई-कोई दोष बारंबार हो जाते हैं और मिटते नहीं, (तब) अकुलाहट (उलझन) हो जाती है। ऐसी परिस्थितिमें स्वदोष प्रगट करने योग्य सत्संगके योगमें - वैसे संगकी चाहत रखना और दोषका निवेदन करनेका स्थान, उसे दोष टालनेका उपाय जानकर, वैसे संगको उपकारी जानना। पूर्ण निर्दोषताके अभिलाषी जीवकी ऐसी आचरणा होती है। जिनेश्वर देवका मार्ग लोकोत्तर निर्दोष - पवित्र है। पूर्ण पवित्र निज स्वरूपको निहारनेके लिए ऐसी तैयारी होती है। पवित्रताकी रुचि वह आत्मरुचि है। जिसकी रुचि, उसकी सावधानी रहती है। पवित्र स्वभावकी सावधानीमें सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होनेका कारणपना है। कारण-कार्यकी परम्पराका ऐसा क्रम है। (१०३७)

*

अनुपम चिद्रुपको - निज परमेश्वरपदको अंतरमें जिन्होंने व्यापक(रूपमें) निहारा, उनको रागादिमें स्वपदका भ्रमभाव मिटा। रागकी मिठास छूट गई, क्योंकि अशुचि व दुःख लगनेसे, अपेक्षा छूटकर उपेक्षा हुई। जिसे रागकी उपेक्षा हुई, उसे रागके विषयभूत देहादि और इन्द्रिय विषयोंकी माया छोड़ना सहज है। शाश्वतपदमें निवास होनेसे, भवउदासी होकर निजसुखराशीको प्राप्त होता है। पूरे भवसे उपेक्षाबुद्धि हुई है, वहाँ भवके पेटाभेदरूप उदय प्रसंगोंमें भी गौणता होना सहज है। सत्संगको निष्फल करनेवाले लौकिकभावको तो इस अलौकिक सन्मार्गमें ज़रा भी अवकाश नहीं है। (१०५१)

*

लोकसंज्ञाका श्रद्धाके साथ सम्बन्ध है। जो लोगोंके अभिप्राय अनुसार जीता है, उसे खुदके ऊपर श्रद्धा नहीं है। जिसे खुदमें श्रद्धा है, उसे लोगोंकी दरकार नहीं होती। खुदकी निर्दोषता ही निःशंकताका आधार होनी चाहिए। सत्यको यदि दूसरेके सर्टिफिकेटकी ज़रूरत पड़े, तो वह

पंगु / अपंग हो जाये। लोगोंके अभिप्रायको खरीदनेवाले सत्यको बेचकर, आत्मघात करते हैं। ऐसे जीवनमें शांति नहीं होती। सम्यक्मार्ग पर चलनेवाला स्वतंत्र विचारक, किसीकी भी परवा किये बिना, मस्तीमें जीता है। उसे कोई भी घटना या दुर्घटना चलित नहीं कर सकती, बल्कि सर्व प्रसंग मार्गकी दृढ़ता होनेमें ही उसे, उपकारी होते हैं। सच्ची समझका ऐसा स्वभाव है। (१०६७)

*

समाजमें बाह्य प्रसिद्धिसे आत्माको कोई लाभ नहीं है। बहुत लोगोंसे परिचय बढ़ना - यह अंतर साधनामें अनुकूल नहीं है, विकल्पवृद्धिका एक निमित्त है। अभिप्रायमें प्रसिद्धि भोगनेके भावसे परिणति दूषित रहती है, व्यग्र रहती है। मैं केवल निर्विकल्प स्वरूप हूँ। विकल्पके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। विकल्पके कालमें भी मैं जैसा (निर्विकल्प) हूँ वैसा ही हूँ। (१२०१)

*

बावड़ी, कुआँ, तालाबका पानी सूख जाता है, परन्तु पाताल फूटकर निकला पानी सूखता नहीं, वैसे (स्वरूप) लक्षके कारणसे उत्पन्न हुआ ज्ञान नहीं छूटता, परन्तु उस ज्ञानके, अंतरकी गहराईमेंसे फुहारे छूटते हैं। ऐसा ज्ञान स्वानुभवका कारण है। धारणा ज्ञान नहीं टिकता। (१२२७)

*

एक मृत्युके प्रसंगसे बचनेके लिए जीव कोई भी कीमत चुकानेके लिए तैयार हो जाता है। परन्तु अनन्त जन्म-मरणसे छूटनेके लिए नहीं जैसे बहाने बनाता है, क्या यह अनन्त विपरीतता नहीं है ? सचमुच (ईमानदारीसे) जिसे छूटना हो, उसे तो सारा जगत गौण हो जाता है, और एक आत्महित ही मुख्य होता है। छूटनेका कामी छूटनेकी कोई भी तक गवाँता ही नहीं। (१२३३)

*

गुणके प्रति प्रेमके कारण गुणानुवाद होना वह भक्तिका स्वरूप है। अनन्त निजात्मगुणोंकी खिलवटका यह बीज है। ''वह केवल को बीजज्ञानी कहे।'' - (गुरुरूप) प्रभुके गुणोंकी भक्तिके गर्भमें एक अंश निर्मलतासे लेकर पूर्ण निर्मलता प्रगट होनेका बीजभूत कारण पड़ा है। (गुरु) / प्रभु तो परम निर्मल प्रेमकी प्रतिमा है। उनके नयन / दृष्टि परम प्रेम बरसाते हैं, रेलमछेल करके जीवको प्रेमरसमें सराबोर कर देते हैं। अहो ! उनका वात्सल्य ! (१३३३)

*

जिज्ञासा :- कोई भी वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है, ऐसा बराबर समझमें आता है, फिर भी उदयके वक्त अच्छा / बुरा लगता है, तो वैसा नहीं लगे इसके लिए क्या करें ?

समाधान :- उदयके वक्त यदि अच्छेपनकी या बुरेपनकी कल्पना होती हो तो, वास्तविकताका अनुभव करनेका प्रयास करना चाहिए और उसी पदार्थका जब वह उदयमें न हो, तब प्रयोगमें लेकर परिणमनकी जाँच करनी चाहिए। ऐसा अभ्यास करनेके पहले विभिन्न पदार्थ जो कि उदयमें हो इसके सम्बन्धित कल्पित अभिप्रायको छोड़ देना चाहिए। अथवा कल्पित अभिप्रायको बदलनेके लिए बारबार उपर्युक्त प्रयोग करना चाहिए। (१५७८)

*

जिज्ञासा :- आग्रह और दृढ़तामें क्या फर्क़ है ?

समाधान :- आग्रहके परिणाम परलक्षी और कषाय युक्त होते हैं, इसलिए दुर्गुण है।

जब कि दृढ़ता है, वह स्वलक्षी परिणाम है, जो अपने लिए सत्य अथवा सिद्धांतसे जुड़े रहनेकी दृढ़ता है, इसलिए वह सद्‌गुण है। इस तरह दोनों परिणामोंमें भेद है। (१५८७)

*

जीव जो-जो उदय प्रसंगमें रस लेता है, उसकी असर खुद पर होती है। दीर्घकाल पर्यंत की हुई सत्संगकी उपासनाकी असर एक क्षणके कुसंगसे नष्ट हो जाती है। जब कि अनन्तकालसे आराधन किया गया ऐसा संसारमार्ग, 'आत्मभावसे किये गये सत्संग' से पलटकर मोक्षमार्गकी राह ग्रहण कर लेता है। मुमुक्षु जीवको इस बातका बहुत-बहुत प्रकारसे विचार कर्त्तव्य है। (१६२०)

*

जिज्ञासा :- स्वाध्याय पद्धति कैसी होनी चाहिए ?

समाधान :- स्वाध्याय स्वलक्षपूर्वक होना चाहिए - ऐसा नियम है, जिसका उल्लंघन नहीं होना चाहिए। स्वलक्षसे स्वाध्याय करनेवालेकी दृष्टि प्रयोजन पर रहती है, जिससे स्वाध्यायमें प्राप्त उपदेश तुरंत ग्रहण होता है, चुकता नहीं है। कभी-कभी ऊपरकी भूमिकाकी बात चले तो इसकी भावना भाता है परन्तु जानकारी बढ़ानेके लिए नहीं सुनता। जानकारी बढ़ानेके अभिप्रायसे (यदि) सुने / पढ़े तो परलक्ष बढ़ता है और शास्त्रीय अभिनिवेश - अहम्‌भाव उत्पन्न होता है। प्रयोजन तो अपनी वर्तमान भूमिकासे आगे बढ़कर पूर्ण होनेका है। अत: ऊपरकी भूमिकाका विषय भावनाका बनता है। अनेक दृष्टिकोणसे अपने आत्महितके एक प्रयोजनको केन्द्रस्थानमें रखकर प्रवर्तन करना चाहिए। (१७३७)

*

उदयभावोंमें वज़न नहीं जाना चाहिए। वज़न जानेसे मुख्यता होकर उसका आग्रह हो जाता है, उन-उन भावोंमें रस वृद्धि हो जानेसे पूरा आत्मा वहाँ अटक जाता है। जब कि आखिरमें तो प्रमत्त-अप्रमत्त समस्त पर्यायों परसे ही अपनत्व उठाकर एकमात्र संपूर्ण वज़न देने योग्य ऐसे निज परमपदका ही वज़न रहना चाहिए, इसके बजाय सामान्य उदयमें वज़न रहा करेगा तो स्वभाव पर वज़न देनेका तो अवकाश ही नहीं रहता। इस प्रकार वज़न देनेकी भूलसे परिणामका प्रवाह उलटी दिशामें चला जाता है। 'सच्ची बातका आग्रह' - वह भूल नहीं है, मूलमें इस अभिप्रायसे बहुभाग (प्रायः) ऐसी भूल होती है। सुक्ष्म विचारवान जीव हो, तो उसे वह समझमें आता है, दूसरेकी समझमें नहीं आता। मार्ग अवरोधका यह एक प्रकार है। (१८०१)

*

कुटुम्ब प्रतिबंध मिथ्यात्वको गाढ़ करता है। जिससे प्राप्त परम सत्संग निष्फल जाता है। सत्संगके चाहक जीवको कुटुम्बकी चाहना छोड़नी जरूरी है। प्राय: तत्त्वज्ञानका अभ्यास करनेवाले जीवका परिभ्रमण - दुर्गतिके कारणरूप इस महादोषके प्रति ध्यान नहीं जाता है, इसलिए (उसका) वह अभ्यास निष्फल जाता है। बाह्यमें व्यवसायादिसे निवृत्ति लेकर, मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिए जब कोई जीव धर्मप्रवृत्ति करता है, तब एक पहलू इतना सुंदर होने पर भी, दूसरे पहलूमें कुटुम्ब प्रतिबंधके परिणामोंका पाड़ा धर्मप्रवृत्तिके घासके पूलोंको चबा जाता है; और अंधजनकी माफिक जीवको इसकी खबर भी नहीं रहती है!! कुटुम्बीओंके प्रति अपनत्वसे स्नेह रहना, वह कुटुम्ब प्रतिबंध है। संसारमें वह एकदम सामान्य (normal) हो चुका है। इसलिए उसकी भयंकरताका बिलकुल भी खयाल, तत्त्वके

अभ्यासी जीवोंको भी नहीं आता है। स्वलक्षके अभावमें, उक्त प्रकारसे वंचनाबुद्धिसे, दुर्लभ ऐसे मनुष्यभवको मिथ्यात्वका नाश किये बगैर ही गवाँ देते हैं !!! (१८०५)

*

सम्यक् निर्दोषता, वह जिनेश्वरके मार्गकी सुंदरता है और यह मार्ग शांत अमृतरसकी सुगंधसे महकता है। किस जीवको वह प्रिय नहीं होगा!! प्रिय नहीं लगेगा! (१८०८)

*

परलक्षका अपराध बहुत बड़ा है, कि जो निज परमात्माका लक्ष छोड़ करके होता है। वास्तवमें लक्ष करने योग्य तो अंतरमें आनंद सागर है; जिसकी उपेक्षा व अनादर करके जीव परलक्ष करता है। इस अपराधका जीवको खयाल नहीं आता है; इसलिए इस अपराधको जीव हलके रूपमें ले लेता है। जिसके कारण यह दोष चालू रहता है। और इस कारणसे जीवको उपदेश नहीं चढ़ता। जीवको दूसरोंके प्रति भावनाके बहाने भी परलक्ष करने योग्य नहीं है, यह वंचनाबुद्धि है। अतः वैसे प्रकारमें जागृति रखनी आवश्यक है। (१८११)

*

कुदरतकी कला अंदाज़ नहीं लगा सके इतनी गंभीर है, ऐसा समझने योग्य है। जिसकी अनेक घटनाएं दृष्टांतरूपसे देखने मिलती है। जैसे कि अनेक महात्माएँ अन्य मतमें जन्म पानेके बावजूद भी आखिरमें मूलमार्गको प्राप्त करते हैं, तो कोई महान साधक जीव; साधनाको गौण करे तो भी उनके निमित्तसे - उनके बाह्य परिणमनके निमित्तसे शासन पर - जगत पर अनुपम उपकार हो जाता है। जिसका दृष्टांत श्रीमद् विश्नुकुमार मुनिराज प्रसिद्ध है। जिनके विकल्पके निमित्तसे सातसो भावलिंगी मुनियोंका उपसर्ग दूर हो गया !! दूसरा दृष्टांत श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेवका है। उन्हें ध्यानमें निर्विकल्पता छुटकर विकल्प (?) / भावना हुई, 'साक्षात् तीर्थंकरदेवके दर्शन व दिव्यध्वनि-श्रवणकी,' तो इस उत्कृष्ट पुण्यभावका फल भी तुरंत ही आया। महाविदेहकी यात्रा हुई, दर्शन - श्रवण प्राप्त हुआ और मुमुक्षु जगतको समयसारजी आदि चौराशी पाहुड (भेंट) की प्राप्ति हुई, जिसके निमित्तसे अनेक धर्मात्माओंकी उत्पत्तिकी परम्परा चली। परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र देव - दोनों युगपुरुष श्री समयसारजीसे उपकृत हुए हैं। महात्माओंके विकल्प हमेशा जगतके लिए कल्याणकारी हुए हैं; ऐसे महान् आत्माओंकी साधनाका माहात्म्य गानेकी शक्ति वाणीमें नहीं है। उनकी निष्कारण करुणाकी स्तुति भी मोहका क्षय करके आत्मस्वभावको प्रगट करती है। अहो ! अहो! (१८५३)

*

महामुनियोंको जिनदर्शनसे उत्पन्न सुखसे इतना संतोष होता है कि जगतके किसी भी पदार्थकी, अरे ! इन्द्रके वैभवकी भी वांच्छा नहीं होती, तो अभेद आत्मदर्शनसे कैसा अचिंत्य सुखामृत प्राप्त होता होगा !! यह गवेषणीय है। तो जो जीव जिन-दर्शन करके सिर्फ पुण्यफलकी अपेक्षा भाते हैं, वे मूलमार्गसे कितने दूर हैं !! और दुर्भागी भी हैं ! यह शोचनीय है। (१८५६)

*

अरे ! आत्मा ! अंतरमें नज़र करके देख तो सही ! कि तू कौन है ? तू सर्वसे भिन्न एक आत्मा हो ! सिवा कुछ नहीं। तो फिर विचार कर कि, यह क्या खेल-तमाशा लगा रखा है ? और किस लिये लगा रखा है ? कब तक ऐसा

करते रहना है ? क्या अभी भी तुझे इन व्यर्थ मिथ्याभावोंसे थकान नहीं लगी ? इस अग्निज्वाला (विकल्पोंकी परंपरा) में शांतिका अनुभव हो रहा है? जलनमेंसे शांति या शीतलता प्राप्त हो सकती है क्या? तेरे निज कल्याणकी जवाबदारीका विस्मरण क्यों करते हो ? और भान भूलकर प्रवृत्ति करते हो? और बेजवाबदारकी कीमत कितनी? बेजवाबदारीसे वर्तनेसे उसका फल भी भोगना ही पड़ेगा। (१९५०)

*

विनम्र अपील

" स्वानुभूतिप्रकाश" मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सद्उपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दे या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको **(e-copy) - pdf.** की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।

श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

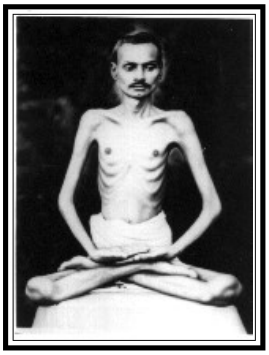

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक-३६०

बंबई, चैत्र वदी १२, रवि, १९४८

जिसे बोधबीजकी उत्पत्ति होती है, उसे स्वरूपसुखसे परितृप्तता रहती है, और विषयके प्रति अप्रयत्न दशा रहती है।

जिस जीवनमें क्षणिकता है, उस जीवनमें ज्ञानियोंने नित्यता प्राप्त की है, यह अचरजकी बात है।

यदि जीवको परितृप्तता न रहा करती हो तो उसे अखण्ड आत्मबोध नहीं है ऐसा समझें।

*

पत्रांक-३६१

बंबई, वैशाख सुदी ३, शुक्र(अक्षयतृतीया), १९४८

भावसमाधि है। बाह्यउपाधि है; जो भावसमाधिको गौण कर सके ऐसी स्थितिवाली है, फिर भी समाधि रहती है।

*

पत्रांक-३६२

बंबई, वैशाख वदी ४, शनि, १९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्य,

नमस्कार पहुँचे।

यहाँ आत्मता होनेसे समाधि है।

हमने पूर्णकामताके बारेमें लिखा है, वह इस आशयसे लिखा है कि जितना ज्ञान प्रकाशित होता है उतनी शब्द आदि व्यावहारिक पदार्थोंमें निःस्पृहता रहती है; आत्मसुखसे परितृप्तता रहती है। अन्य सुखकी इच्छा न होना, यह पूर्णज्ञानका लक्षण है।

ज्ञानी अनित्य जीवनमें नित्यता प्राप्त करते हैं, ऐसा जो लिखा है वह इस आशयसे लिखा है कि उन्हें मृत्युसे निर्भयता रहती है। जिन्हें ऐसा हो उनके लिये फिर यों न कहें कि वे अनित्यतामें रहते हैं तो यह बात सत्य है।

जिसे सच्चा आत्मभान होता है उसे, मैं अन्य भावका अकर्त्ता हूँ, ऐसा बोध उत्पन्न होता है और उसकी अहंप्रत्ययीबुद्धि विलीन हो जाती है।

ऐसा आत्मभान उज्ज्वलरूपसे निरंतर रहा करता है, तथापि जैसा चाहते हैं वैसा तो नहीं है। यहाँ समाधि है।

समाधिरूप।

*

बहिनश्रीके वचनामृत

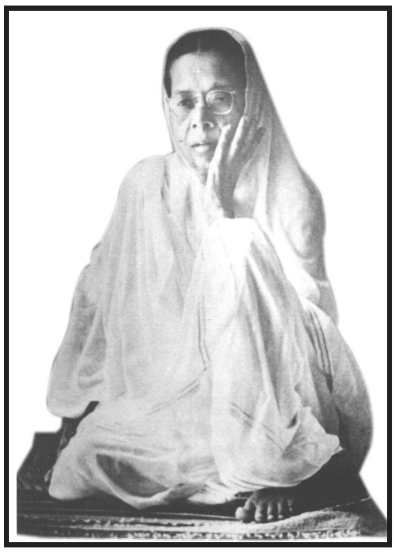

चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना-ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगतको - चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्यका नाश हो जाय। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्यके परिणामके साथ कुदरत बँधी हुई है - ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थकरोंकी कही हुई बात है। (२१)

*

भविष्यका चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथकी बात है। इसलिये कहा है कि - 'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!' (२८)

*

अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भटकते-भटकते, सुखकी लालसामें विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनंत दुःखोंको सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करनेसे वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़ेसे पुरुषार्थके लिये वहाँसे अटका और गिरा। - इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करनेमें अनंत बार अटका। पुण्योदयसे यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुषका योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। (६०)

*

तेरे चित्तमें जब तक दूसरा रंग समाया है, तब तक आत्माका रंग नहीं लग सकता। बाहरका सारा रस छूट जाय तो आत्मा - ज्ञायकदेव प्रगट होता है। जिसे गुणरत्नोंसे गुँथा हुआ आत्मा मिल जाय, उसे इन तुच्छ विभावोंसे क्या प्रयोजन? (२६४)

*

चैतन्यकी धरती तो अनंत गुणरूपी बीजसे भरी, उपजाऊ है। इस उपजाऊ धरतीको ज्ञान-ध्यानरूपी पानीसे सींचने पर वह लहलहा उठेगी। (३२०)

*

अनंत जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभावको टालकर, सिद्ध हुए हैं; इसलिये यदि तुझे सिद्धमण्डलीमें सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।

किसी भी जीवको पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होना ही नहीं है। वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरासे वस्तुको पहुँच जाता है, तो कोई जीव धीरे-धीरे पहुँचता है।

वस्तुको पाना, उसमें स्थिर रहना और आगे बढ़ना - सब पुरुषार्थसे ही होता है। पुरुषार्थ बाहर जाता है उसे अंतरमें लाओ। आत्माके जो सहज स्वभाव हैं वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। (३४३)

*

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी द्वारा पूज्य भाईश्री शशीभाईको लिखित पत्र (पत्रांक-४४)

कलकत्ता
१०-९-१९६३

ॐ
अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

आत्मार्थी.....

पत्र आपका ता. ३-९ का मिला। पहलेवाला पत्र भी यथासमय मिल गया था। दशलक्षणी पर्व, आपने तीन लोक में परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंहस्वरूप श्री गुरुदेव के सान्निध्य में मनायें होंगे। वह कहते हैं - ''स्वभावअंश में किंचित् भी दोष नहीं है, नित्य स्वभाव में दृष्टि थंभ जानेसे, उत्पन्न हुए सहज स्वभाव में, क्षमा आदि दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जड़ के) पर के हैं; अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवंत वर्तो ! हमने कभी दोष किया ही नहीं, ऐसा स्वभाव निरंतर वृद्धि पामो। विभाव की गूँज में गूँजता हुआ अज्ञान भाव सहज नाश पामो। विभाव में तनीजो नहीं। स्वभाव-सीमा में निरंतर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिक की सीमा को पार नहीं कर सकता, अतः वहीं लय हो जाता है।''

''करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनि या अनंत सुख भरे है।।''

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मँगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्वअवलंबन से सहज ही विभाव से पृथक् होकर प्रगटती रहती है। **हे शशीभाई !** अनेकानेक जीवों की योग्यता अक्षय सुख के उदय की है, अतः तीर्थंकर से भी अधिक सत्पुरुष का योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधर से विमुख कराकर स्वयं के नित्य भंडार की ओर लक्ष्य कराती रहती है; यहाँ से ही पूज्य गुरुदेव के न्याय अनुभवसिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।....

''जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन।।।''

वात्सल्यानुरागी निहालचंद्र

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के स्वहस्ताक्षर में
'आत्म-भावना'

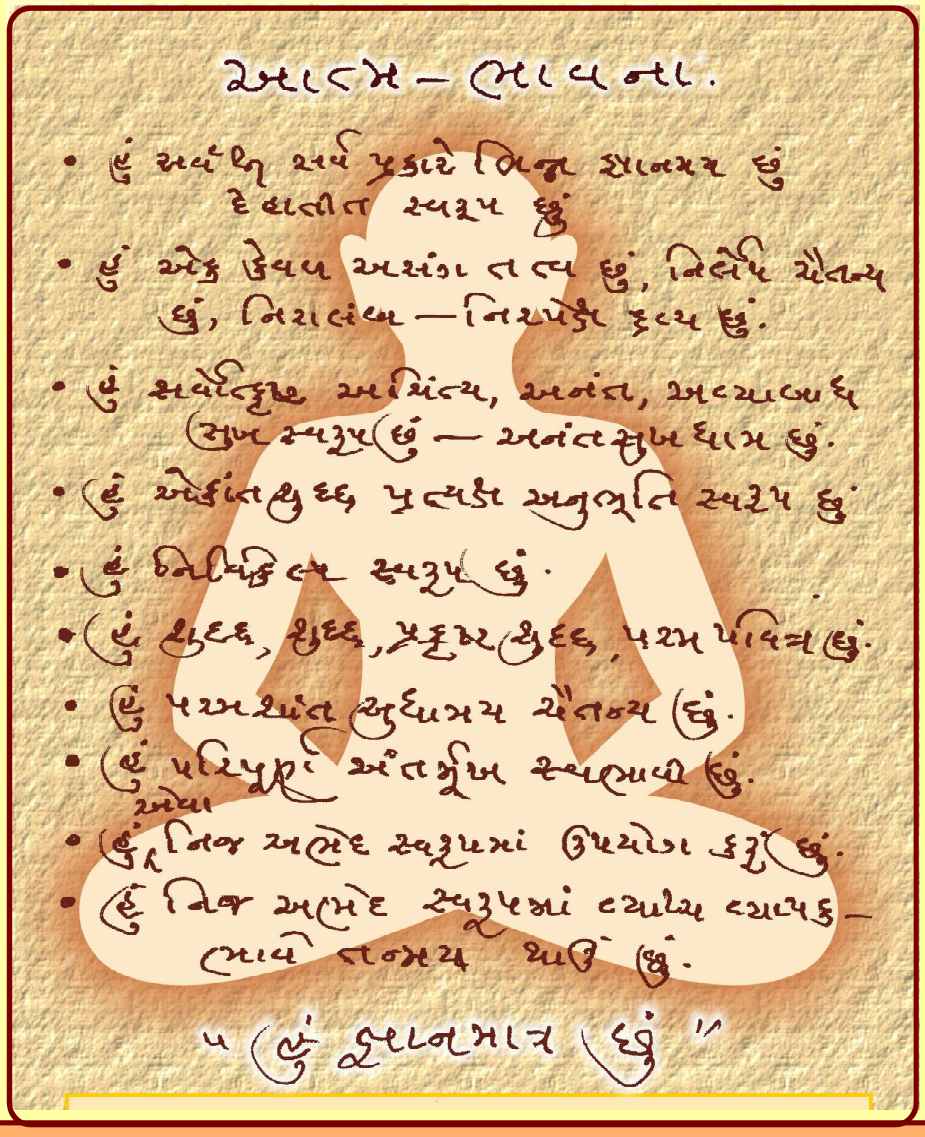

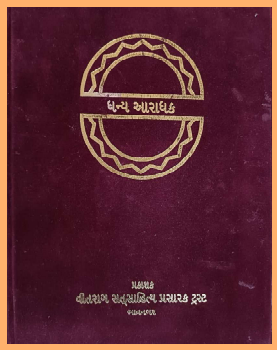

'धन्य आराधक' (गुजराती)

(पूज्य भाईश्री शशीभाईके व्यक्तित्वके अनेक पहलुओंकी झाँखी कराता एक अनूठा सचित्र संकलन-सिर्फ गुजरातीमें)
जिज्ञासुओंको ट्रस्ट द्वारा भेंट दिया जायेगा)

-संपर्क -

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

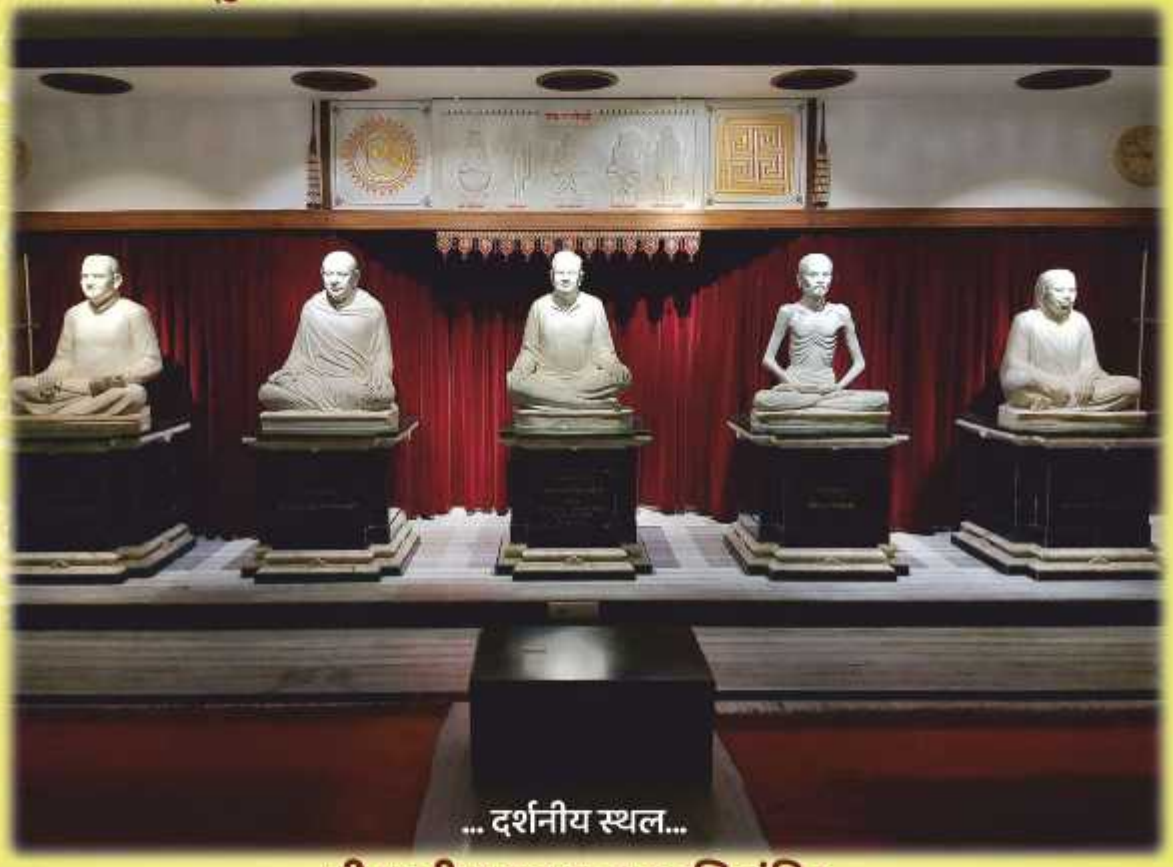

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

mayur@100888 82746 50941